अध्याय इकतीसवाँ

॥श्री गणेशाय नमः॥ श्री सरस्वत्यै नमः॥ श्री सिद्धारूढ़ाय नमः॥

"आप के सत्संग से जो लाभ हुआ उसके कारण, इस संसार में स्थित निःसार तथा अशाश्वत वस्तुओं में से मन बाहर हो गया; हे कृपासागर, अब आप ऐसा उपाय कीजिए जिससे मेरा मन फिर से सांसारिक मोहजाल में न फँसे।"
हे सतगुरुनाथजी, आप सच्चिदानंदस्व रूप होकर निर्गुण, अव्दैत, निर्विकल्प होते हुए, भेदरहित, निराकार तथा रूप रंग न होने वाला केवल चैतन्य रूप हैं। हे सिद्धनाथ सतगुरुनाथजी, आप के पूर्ण स्वरूप का बयान करना असंभव होने के कारण, वेद अपने आप मौन हो गए। ऐसे आप केवल भक्तों के प्रेम के लिए शरीर धारण करके, कृपादृष्टि से देखकर उन्हें तुरंत उद्धरते हैं।

एकबार महाराजजी के पास एक बारा वर्ष आयु का बालक रोता हुआ आकर उनके चरणों में गिर पड़ा। उसे चरणों में ही पड़ा रहा देखकर कृपालु महाराजजी ने उसे उठाया और अपने पास बिठाकर पूछा, "हे बालक, तुम किस के पुत्र हो? क्यों दुख कर रहे हो? कहाँ से आए हो, ये सब कुछ निर्भय होकर मुझे बताओ।" दयालु सतगुरुजी के प्रेमभरे शब्द सुनकर वह बालक शांत हुआ और बोला, "बाबाजी, मेरी बात सुनिए, इस जगत में मेरा अपना कोई भी नहीं है। जो मेरे अपने थे, उन्होंने मुझे घर से निकाल दिया। अब मुझे माँ, पिताजी, भाई, बहन इनमें से कोई भी अच्छा नहीं लग रहा है। उनकी सेवा न करते हुए, मेरी मनभायी शिवपूजा करने के कारण ही मुझे घर से निकाल दिया गया है, इसलिए अब मैं फिर से घर नहीं लौटूँगा। सतगुरुनाथजी आप साक्षात श्रीशिवजी का ही रूप हैं ऐसी आप की कीर्ति बहुतेरों से सुनकर ही मैं आप की शरण में आया हूँ। अब इस दीन मनुष्य को आप तारिए या मारीए, परंतु कृपा करके मेरा तिरस्कार मत कीजिए; मेरी पूरी जिम्मेदारी अब आप ही पर है।" उसके ये करुण शब्द सुनकर दयाघन मन ही मन पिघल गए और बोले, "अब तुम कहीं भी मत जाओ, यहीं रहो। मैंने तुम्हारा नाम 'शरण' रखा है।" इस प्रकार शरण मठ में रहने लगा; प्रतिदिन वह भिक्षा माँगने के लिए गाँव की बस्ती में जाता था, भिक्षा में प्राप्त अन्न लाकर गुरुजी के सामने रखता था और जो कुछ भी गुरुजी देते थे वह प्रेम पूर्वक स्वीकार करता था। एकबार सतगुरुजी ने उसकी

परीक्षा करने हेतु उसे भोजन के लिए बुलाया ही नहीं, फिर भी शरण सतगुरुजी का चिंतन करते हुए स्वस्थता से बैठा रहा। इस प्रकार एक दिन पूरा फ़ाका रहने के पश्चात दूसरे दिन वह भिक्षा के लिए गया, हालाँकि बहुत भिक्षा प्राप्त होने के पश्चात उसने उसमें से एक दाना भी नहीं खाया। सतगुरुजी की आज्ञा के बिना अन्न स्वीकार करना यह विष लेने के बराबर है यह उसकी धारणा होने के कारण, भूख से अगर प्राण भी निकल जाए, फिर भी वह गुरुआज्ञा के बिना भोजन स्वीकार नहीं करता था। शरण भिक्षा लेकर आते ही सतगुरुजी ने उसे कहा, "कल तुम दिनभर भूखे थे, इसलिए आज भिक्षा लेकर आते समय मार्ग में ही तुम ने खाना खा लिया होगा, इसमें मुझे संदेह ही नहीं है।" सतगुरुजी के ये शब्द सुनकर दीनता से उनके सामने झोली रखकर उन्हें प्रणाम करके एक शब्द भी बोले बगैर शरण सेवा करने के लिए निकल गया। शरण हमेशा हँसमुख रहता, हमेशा सिद्धारूढ़जी का नामस्मरण करता और सभी के साथ प्रेम तथा विनम्रता से व्यवहार करता था। उसके पश्चात सतगुरुजी ने शरण से कहा, "तुम परली तरफ जो पेड़ है, उसपर चढ़ जाओ और पके हुए फल निकालकर नीचे फेंको ताकि हम वे सारे फल इकट्ठा कर सकेंगे।" गुरुआज्ञा शिरोधार्य मानकर तत्काल शरण पेड़ पर चढ़ गया, उस समय उसके हाथपाँव थर थर काँप रहे थे, परंतु शरण मन ही मन सोच रहा था की इस शरीर पर केवल सतगुरुजी का अधिकार है, यहाँ स्थित कोई भी वस्तु मेरी नहीं है। अगर सतगुरुजी ने चाहा तो मेरे शरीर की वे रक्षा करेंगे, अन्यथा नहीं, इसलिए मेरे शरीर के प्रति मेरे मन में कोई चिंता नहीं है। शरण धीरे से पेड़ पर चढ़ गया; भोजन न करने के कारण उसके शरीर में बिलकुल शक्ति नहीं थी, परंतु फिर भी गुरुनाथजी पर उसकी भक्ति दृढ़ थी। उसने सोचा की सतगुरुजी ने मुझे तारने के लिए ही यह योजना बनायी है; मन में वह सतगुरुजी के चरणों का ही चिंतन कर रहा था, तथा अन्य किसी भी विचार को उसके मन में जगह नहीं थी। देखते देखते वह एक ऊंची टहनी पर चढ़ गया, और पलभर वही बैठकर फल तोड़ने हेतु उसने हाथ टहनी के सिरे तक फैला, उसी पल थरथराने कारण उसका पाव टहनी से फिसल गया और हाथ में पकडे हुए फल भी छूट गए; "सिद्धारूढ़जी" ऐसी जोर से आवाज देकर शरण ऊँचाई से जमीन पर धम् से गिरकर बेहोश हो गया|

अन्य भक्तगण दौड़ते हुए उसके पास पहुँचे, सतगुरुनाथजी यह सब कुछ दूर से देख रहे थे, उन्होंने कहा, "उसकी जान को कोई खतरा नहीं है। आप सब लोग मठ में जाईए, मैं उसके साथ रहता हूँ।" ऐसा उन्होंने कहते ही सभी भक्तगण आश्चर्य करते हुए मठ में गए।

सतगुरुजी एकांत में शरण के समीप जाकर बैठे और उसकी छाती को हाथ से स्पर्श करके बोले, "हे बालक, उठ।" सतगुरुजी के वे अमृततुल्य शब्द कानों पर पड़ते ही शरण को होश आया, आँखे खोलकर देखते ही उसने सतगुरुनाथजी को अपने पास बैठा हुआ पाया। सतगुरुजी ने उसे पूछा, "अब तुम्हें किस प्रकार की अनुभूति हुई?" शरण ने कहा, "मैं स्वयं के प्रति कुछ भी नहीं जानता, इसी बात का मुझे अनुभव हुआ।" उस पर सतगुरुजी ने कहा, "तुम स्वयं कुछ भी न जानने वाले होकर ही रहो और सच कहूँ तो वही स्वरूप ज्ञान है, यह तुम समझ लो। अब तुम इसी बेहोशी की स्मृति को मन में हमेशा के लिए समाकर रखो और उस 'तुम पर' तुम 'वह तुम्हीं हो' ऐसा समझकर ध्यान करो (हालाँकि, बेहोशी में शरीर का चलन रुका हुआ होता है, फिर भी बेहोश मनुष्य जिंदा है यह सभी जानते हैं और यह जानकारी उसमें स्थित आत्मा के कारण ही होती है। 'तुम पर' यानी इसी आत्मा पर 'वह तुम्हीं हो' यानी यही तुम्हारा असली स्वरूप है ऐसा समझकर ध्यान करने के लिए सिद्धारूढ़जी कहते हैं।)" ऐसा कहकर सतगुरुनाथजी ने उसके सिर पर अपना अमृततुल्य हाथ रखा, उसी क्षण उसने पल भर आँखे मूँद लेते ही उसे अंत:करण में आत्मज्योति दिखाई पड़ी। उसे करोडो सूर्यों से भी अधिक तेजोमय ज्योति दिखाई दी और परमात्मा के सिवाय अन्य सभी वस्तुओं का भान पूर्ण रूप से खोकर, वह उसी प्रभा में एकरूप हो गया। पल भर के लिए उसी स्वरूप में वह स्थिर होकर रह गया और उसके पश्चात देहस्थिति को प्राप्त हुआ। उसने अनुभव किया की सारा बाहरी जगत पूर्ण रूप से बदला हुआ दिखाई पड़ रहा था। वह ज्योति उसे चारो ओर दिखाई देने लगी। सारे जगत में वह स्वयं ही स्थित है ऐसा उसे अनुभव होने लगा, तथा वह गुरुजी से भिन्न नहीं है ऐसा उसे महसूस होने लगा। बाहरी जगत की ओर टकटकी लगाकर देखते ही सामने स्थित दृश्य को वह भूलने लगा; चारो ओर अखंड तथा अक्षय स्वरूप (आत्मा) को वह देखने लगा। ऐसा

यह स्वरूप ज्ञान कृपालु होकर सतगुरुजी ने शरण को देने के कारण वह कहने लगा, "मैं सचमुच ही धन्य हो गया हूँ।" इस आनंद की तुलना में इस त्रिभुवन में अन्य किसी भी प्रकार का आनंद श्रेष्ठ हो नहीं सकता। गुरुकृपा से जैसे मुझे आनंद की निधि ही प्राप्त हो गयी है। उसपर सतगुरुजी ने उसे कहा, "मैं जो कह रहा हूँ उसे अच्छी तरह से ध्यान में रखो। इस स्वरूप पर तुम अविरत ध्यान करो तथा विषयोपभोगों का दृढ़ मन से त्याग करो। मैं ज्ञानी हो गया हूँ ऐसा समझकर अगर तुम विषयोपभोगों को मन से स्वीकार करने लगोगे तो समझ लो की तुम्हारा पतन निश्चित है, इतना ही नहीं, तुम्हे प्राप्त हुआ स्वरूप ज्ञान भी नष्ट हो जाएगा। आँखों से जो भी विषयोपभोगों की वस्तुएँ तुम देखोगे, मन में सोऽहं भाव (मैं ही ब्रह्म हूँ) दृढ़ करके, उन सभी को नि:शेष कर दो। सर्वगत होने वाली आत्मा तथा ईश्वर ये एकरूप ही हैं यह समझ लो। मन में आने वाले विचारों को निकालना अति कठिन होता है। उनको सूक्ष्मता से नष्ट करने का उपाय तुम्हें बताता हूँ, ध्यान से सुनो। सतगुरुजी पर सोऽहं भाव रखो, उसके पश्चात जब जब मन में विषयोपभोगों के विचार आएँगे, तब तब उन सभी को सतगुरु रूप ही समझ लो। मन में स्थित विषयोपभोगों पर सोऽहं भाव रखने से अंत:करण में निर्विकल्प स्वरूप दिखाई पड़ता है; उसी स्वरूप को सर्वत्र देखो।" इस प्रकार समझने में कठिन ऐसा सतगुरुबोध ध्यान से सुनकर शरण ने कहा, "मैं सतगुरुकृपा से सचमुच धन्य हो गया।" पेड़ से नीचे गिर जाने के कारण शरण का शरीर जखमी हुआ था, सतगुरुजी के हाथ के स्पर्श से वह पहले जैसा हो गया। उसपर झट् से उठकर शरण ने सतगुरु चरणों पर सिर रखा, अपने दोनो हाथों से उठाकर सतगुरुजी उसे मठ में ले गए। उसके पश्चात शरणप्पा को नहलवाकर सतगुरुजी उसके साथ भोजन करने बैठे; उन्होंने उसे प्रेम पूर्वक निवाले खिलाकर, हर्षित करके तृप्त किया।

एक दिन एक सज्जन सिद्धाश्रम में पधारे और उन्होंने सतगुरुजी को प्रणाम करने के पश्चात, सतगुरुजी ने पूछा, "किस काम से यहाँ आप का आना हुआ?" उस सज्जन ने कहा, "मैं विजापुर का रहने वाला हूँ तथा आप के दर्शन के लिए आया हूँ। मैं षण्मुखस्वामीजी के साथ रहता हूँ और इस शरणप्पा को पहचानता हूँ। आप का यह शिष्य, शरणप्पा, विजापुर से यहाँ आया है और

बचपन से वह षण्मुखस्वामीजी के साथ ही रहता था। बारा वर्षों से पूर्व एक रात सोये हुए षण्मुखस्वामीजी के सपने में उन्हें आप दिखाई पड़े और बोले, 'कल प्रात:काल तुम्हें एक शिशु दिखाई देगा, तुम अवश्य उसके पालन पोषण की व्यवस्था करना।' ऐसा कहकर आप अंतर्धान हो गए, षण्मुखस्वामी ने उठकर देखा तो उन्हें अंधेरे में एक जगह दिव्य प्रभा दिखाई पड़ी। तुरंत ही उस जगह अंधेरा छा गया। दूसरे दिन प्रात:काल जल्दी उठकर बाग में जाकर देखते ही एक अदभुत चमत्कार हुआ। पेड़ के नीचे सफेद कपड़े में एक सुंदर शिशु लपेटकर रखा हुआ था, उसे देखकर स्वामीजी अति आनंदित हुए और उसे उठाकर वे मठ में आए। उस शिशु को देखकर सभी आश्चर्य से दंग रह गए। मैं वही था इसलिए उस शिशु को उन्होंने मुझ पर सौंपा और कहा, "इस शिशु का पालन पोषण तुम अपने पुत्र के समान करो। प्रतिदिन पुराणकथा, कीर्तन आदि सुनने के लिए मठ आते समय इस शिशु को अपने साथ ले आना।' मेरा घर मठ के समीप ही था, वहाँ इस शिशु को ले जाकर मैंने इसे मेरा पुत्र समझकर उसका पालन पोषण किया, फिर भी हम सब को छोड़कर वह यहाँ आया हुआ है। हमारे साथ वहाँ रहते समय, यह प्रतिदिन षण्मुखस्वामीजी का कीर्तन, प्रवचन सुनता था, कुलमिलाकर यह निरंतर सत्संग में ही रहता था। एक दिन प्रात:काल उठकर देखा तो यह कहीं भी दिखाई नहीं पड़ा, सर्वत्र खोजने के पश्चात भी नहीं मिला। उसके पश्चात हमें वार्ता मिली की इस ने आप के चरणों में शरण ली है। इसीलिए उसे मिलने के लिए यहाँ तक आया हूँ। आप के साथ उसे यहाँ रहते हुए देखकर मैं सचमुच ही बहुत आनंदित हुआ हूँ, अब आप उसे मेरे साथ भेज दीजिए।" उस सज्जन ने ऐसा कहते ही, सतगुरुनाथजी शरण की ओर मुड़कर बोले, "शरण, तुम फिर से वहाँ जाने वाले हो?" शरण ने कहा, "मुझे आप्तमित्र तथा रिश्तेदारों की लौकिक संगति पसंद नहीं है, मैं ऐसी संगति को परमार्थ मार्ग की एक विपत्ति ही समझता हूँ। मैं आप के चरणों में मेरे प्राण दे दूँगा, परंतु यहाँ से कहीं भी नहीं जाऊँगा।" यह सुनकर भक्तों को उद्धरने वाले दयालु सतगुरुनाथजी ने उस सज्जन से कहा, "आप ने इसका निश्चय देख लिया है, है न?" उस सज्जन ने कहा, "मैं इसे घर ले जाने का आग्रह नहीं करुँगा। धन्य है यह शरण, इसे आप के चरणों के पास ही रहने दीजिए। उससे मुझे भी आनंद

ही होगा।" ऐसा कहकर वह सज्जन सतगुरुजी को प्रणाम करके फिर से अपने गाँव के लिए निकल पड़ा, उस समय शरण ने उसे प्रणाम किया और दीन होकर उसकी क्षमा माँगी; उसे आशिर्वाद देकर वह सज्जन अपने गाँव लौटा।

पिछले अध्याय में दानव्वा की प्रसूति के समय, सिद्धारूढ़जी उसके सपने में जाकर उसके शिशु को ले जाने की कहानी बयान की थी। वही शिशु उन्होंने षण्मुखस्वामीजी को देकर, बारा वर्षों तक उसे सत्संग में रखा था। पूर्वजन्म के तपोबल के कारण ही उस शिशु को सत्संग तथा सत्श्रवण (ईश्वर तथा धार्मिक विषयों की चर्चा सुनना) का लाभ हुआ, जिससे उसके मन में दृढ़ वैराग्य की भावना जागृत होने के कारण वह घर छोड़कर निकल गया। सिद्धारूढ़जी ने दिया हुआ शिशु फिर से उन्हीं के सत्संग में आया और धन्य होकर उसने शुद्ध ब्रह्म को जान लिया| पिछले अध्याय के लक्ष्यार्थ में ज्ञानपुत्र अंतर्धान हो जाने की बात बताई थी; उस ज्ञानपुत्र को विषयोपभोगों की संगति से हटाकर गुरुदेवजी ने सत्संग में रखा। वहाँ के निर्मल माहौल में वह पला और फिर से सतगुरुजी के पास आया। केवल गुरुकृपा से ही स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करके वह धन्य हो गया। अस्तु। जिसका श्रवण करने से सभी पाप भस्म हो जाते हैं, ऐसे इस श्री सिद्धारूढ़ कथामृत का मधुर सा यह इकतीसवाँ अध्याय श्री शिवदास श्री सिद्धारूढ़ स्वामीजी के चरणों में अर्पण करते हैं। सबका कल्याण हो।

॥ श्री गुरुसिद्धारूढ़चरणारविंदार्पणमस्तु ॥